चरकसंहिता

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आचार्य चरक और आयुर्वेद - इन दोनों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक का श्रवण होने पर दूसरे का स्वतः स्मरण हो आता है। शाश्वत एवं नित्य आयुर्वेद जो परम्पराक्रम से ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, भारद्वाज आदि तक पहुँचा फिर वही आयुर्वेद पुनर्वसु, आत्रेय, अग्निवेश से प्रवर्तित हो आचार्य चरक के पास आया तथा महर्षि चरकाचार्य का वह कल्याणकारी उपदेश 'चरकसंहिता' के नामसे विख्यात हो गया।

यद्यपि चरकसंहिता के साथ महर्षि आत्रेय, महामेधा अग्निवेश तथा दृढबलका नाम जुड़ा है, किंतु आचार्य चरक विशेषरूपसे प्रतिष्ठित हो गये और चरकसंहिता आचार्य चरक की कृति के रूप में सदा के लिये स्थिर हो गयी। स्वयं चरकसंहिता में यह उल्लेख है कि जब आयुर्वेदीय संहिताओं का प्रणयन हुआ तो उन्हें देखकर तथा परमर्षियोंकी परदुःखकातरता और सर्वहितैषी लोककल्याणकारक भाव को देखकर स्वर्गलोक में देवता भी आनन्दित होकर साधु-साधु ऐसा कहने लगे। केवल इसलिये कि इन ऋषियों ने समस्त रोग-शोकों को ना दूर करने के जो उपाय प्रकाशित किये हैं, उनसे = प्राणिजगत् को कष्टों से छुटकारा मिल जायगा। ये संहिताकार = ऋषि कोई सामान्य मानव नहीं थे, अपितु ये ऋतम्भरा प्रज्ञा, सिद्धि, स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा, दयालुता = तथा ज्ञान के अधिष्ठातृ देव से सम्पन्न थे। इतना ही नहीं, इनमें प्रतिपादित आयुर्वेद के सिद्धान्त न केवल लोक अपितु परलोक के लिये भी हितकारी हैं 'लोकयोरुभयोर्हितम्'। इस दृष्टि से आचार्य चरकद्वारा निर्दिष्ट बातें न केवल शरीर स्वास्थ्य से सम्बद्ध हैं, अपितु इसमें आत्मकल्याण तथा चराचर जगत् के आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति और आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति के उपायों को दर्शाया गया है। आचार्य चरक बताते हैं कि तमोगुण एवं रजोगुण की निवृत्ति हो जाने और शुद्ध सत्त्वभाव की प्रतिष्ठा हो जानेपर विशुद्ध ज्ञान की

स्थिति में सत्यबुद्धि का प्रादुर्भाव होता है, जिससे अज्ञानरूप मोह की निवृत्ति हो जाती है और फिर प्रकृति-पुरुष का विवेक हो जानेपर परमपद की प्राप्ति हो जाती है-

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।

ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते।।

अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता, कृष्णद्वैपायन व्यास के शिष्य वैशम्पायन का अपर नाम चरक था। इस सम्बन्ध से उनके सब अन्तेवासी चरक कहे जाते थे। वस्तुतः वेदव्यास का शिष्य वैशम्पायन कृष्ण यजुर्वेद का अध्येता था। वह कृष्ण यजुर्वेद की 86 शाखाओं का प्रवचन कर्ता था। उसका प्रधान चरण चरक कहलाया। उसके सब शिष्य. गुरु परम्परानुसार चरक हुये तत्पश्चात् आयुर्वेद संहिता के अध्येता भी चरक कहलाए। इससे ज्ञात होता है कि मूल रूप से चरक नाम एक व्यक्ति का था। तदुपरान्त अन्य व्यक्तियों का गौण नाम चरक हुआ। गौण व्यक्ति के नाम से कोई ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं होता। अतः अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता वैशम्पायन था जिसकी आख्या (उपाधि) चरक थी। चरक नाम के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ है।

प्रसिद्ध फ्रांसिसी सिल्वा लेवी ने बौद्ध पुस्तक चीनी त्रिपिटक में खोजा कि चरक नाम का व्यक्ति इण्डोसीरियन राजा कनिष्क का राज-चिकित्सक (दूसरी शताब्दी ई०) था। एक परिकल्पना यह है कि पाणिनि के सूत्र में 'चरक' नाम का उल्लेख मिलता है। पाणिनि का काल ई० पू० छठीं शताब्दी माना जाता है। किन्तु पाणिनि ने 'चरक' शब्द का प्रयोग वेदों की एक शाखा के अनुयायी वर्ग के लिये किया है न कि चिकित्सक चरक के लिये। कुछ विद्वानों का विचार है कि 'चरकसंहिता' के चरक और पतंजलि एक ही व्यक्ति है ।

इतने मतों की विभिन्नता होने के कारण चरक का समय भी निश्चित नहीं है। कृष्ण द्वैपायन के शिष्य वैशम्पायन ने कलि के आरम्भ में कुरु महाराज जनमेजय को प्रसिद्ध सर्पययज्ञ में भागवत की कथा सुनाई। प्रतीत होता है कि कलिकाल के प्रारम्भ में ही वैशम्पायन ने चरकसंहिता का प्रतिसंस्कार किया। स्वयं वैशम्पायन की उक्ति 'वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले'। अर्थात् कलियुग में मानव आयु परिमाण सौ वर्ष है। चरक के अनुसार यह परिमाण कलि के प्रारम्भ में होता है। तत्पश्चात् कुछ

कुछ न्यून होता जाता है। कलि के 300-400 वर्ष बीतने तक ऋषियुग माना गया है। ऋषि होने से चरक कलि के प्रारम्भ में हुये।

इस सम्बन्ध में अलबेरुनी का कथन भी उधृत किया जा सकता है आज से 900 वर्ष पूर्व भारतीय शिक्षा के प्रेमी मुसलमान यात्री अलबेरूनी के समय तक भारतीय इतिहास में चरक ऋषिरूप में प्रसिद्ध थे। यह त्रुटिपूर्ण है कि चरक ऋषि को कनिष्क की राजसभा का कहा जाये। यदि ऐसा होता तो उसे ऋषि न कहा जाता। नाम एक्य से काल ऐक्य नहीं होता है। चरक प्रदर्शित मात्राएँ उस काल की हैं। मानव में शारीरिक शक्ति बहुत अधिक थी। वह काल दूसरी शती ई० जब से सहस्रों वर्ष पूर्व था। अतः चरक संहिता का काल कनिष्क का काल कदापि नहीं। पतञ्जलि ने भी चरक संहिता का किञ्चित् संस्कार किया था।

वी० वरदाचार्य ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में चरक को गांधारवासी कहा है तथा उनका समय प्रथम शताब्दी ई० के आसपास माना है। कुछ विद्वानों ने चरक का समय नागार्जुन (द्वितीय शती) से पूर्व माना है क्योंकि नागार्जुन के समय में पारे से बने औषध प्रचलित हो गये थे जिनका उल्लेख चरक ने नहीं किया है, अत: चरक सम्भवतः ईसा से द्वितीय शती पूर्व के आचार्य रहे होंगे।

7वीं, 8वीं और नवीं शताब्दी में जब अरबी विद्वता अपनी ख्याति के सर्वोच्च शिखर पर थी, चिकित्सा शास्त्र के सराकन तथा लैटिन ग्रन्थों में चरक को इस विषय का प्रकाण्ड पण्डित माना गया है।

चरकसंहिता, काय-चिकित्सा का आदि एव प्रामाणिक ग्रन्थ है। अनेक युगों के विद्वानों ने अपनी प्रतिभा तथा बुद्धि वैभव के बल पर आयुर्वेद सम्बन्धी जिन सिद्धान्तों तथा तथ्यों को खोज निकाला उनका सुन्दर समन्वय हमें चरक संहिता में प्राप्त होता है। चरकसंहिता का उपदेश दिया आत्रेय पुनर्वसु ने प्रणयन किया उनके साक्षात् शिष्य अग्निवेश ने तथा प्रतिसंस्कार किया चरक ने तथा परिवर्धन किया दृढबल ने। इस प्रकार इन चार विद्वानों की विमल प्रतिभा की धारा इस संहिता के पृष्ठों में प्रवाहित होती है। आधुनिक युग में उपलब्ध चरक संहिता के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'इति

हस्माह भगवानात्रेयः’ यह प्रथम वाक्य मिलता है तथा चरक संहिता के 120 अध्यायों में से 79 अध्यायों की समाप्ति में ‘अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते' वाक्य मिलता है तथा शेष 41 अध्यायों में ‘दृढ़बलसम्पूरिते’ शब्द आते हैं इस प्रकार चरक संहिता किसी एक ऋषि की रचना नहीं है।

चरक संहिता कायचिकित्सा (औषधि विज्ञान) का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—इसकी ख्याति बाहर भी फैली और अरबी में इसका अनुवाद भी हुआ। अलबेरुनी ने लिखा कि “हिन्दुओं की एक पुस्तक है जो चरक नाम से प्रसिद्ध है और औषधि की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है”। सामान्यतः आयुर्वेद के ग्रन्थों में आठ स्थान और एक सौ बीस अध्याय होते हैं। आठ स्थानों में मुख्य प्रतिपाद्य विषय का ग्रन्थकर्ता प्रतिपादन करता है। मनुष्य की और हाथी की आयु ज्योतिष सिद्धान्त से एक सौ बीस वर्ष 5 दिन है। इसीलिए जन्म पत्रिकाओं में विशोत्तरी दशा से विचार किया जाता है।

चरकसंहिता में 8 स्थान और 120 अध्याय हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन आगे दिया जा रहा है

(1) सूत्र स्थान- इसमें वैद्यक सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी सामान्य बातों का वर्णन है। इसमें 30 अध्याय हैं जिसके 26 वें अध्याय में अन्नपानविधि का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

(2) निदान स्थान है- इसमें आठ अध्याय हैं जिनमें मुख्य रोगों का वर्णन है।

(3) विमान स्थान-दोष, भैषज आदि को विशेष रूप से बतलाया है। विमान का अर्थ है-दोषादि का मान अर्थात् प्रभाव आदि का विशेष ज्ञान। इसमें 8 अध्याय हैं। इसका अन्तिम अध्याय तत्कालीन अध्ययन अध्यापन विधि की जानकारी के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा पर्याप्त रोचक है।

(4) शारीर स्थान-इसमें शरीर-रचना का वर्णन है।पंचमहाभूत और चेतना के मिलने से पुरुष होता है। इसमें ईश्वर, आत्मा और मन के विषय में सामान्य प्रश्नों की चर्चा है। आठ अध्याय है।

(5) इन्द्रिय स्थान- इसमें रोग का निदान एवं साध्यासाध्य विचार है। इन्द्रियों का स्थान रिष्ट है- ‘इन्द्रियम्रिष्टम्’ जिन लक्षणों से निश्चित मृत्यु मानी जाती है वे रिष्ट है। इसमें 12 अध्याय है। ये रिष्ट चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा जाने जाते हैं। इन्हीं की जानकारी के लिए ‘इन्द्रियस्थान’ की रचना है जिससे वैद्य असाध्य रोगों के निवारण के लिए व्यर्थ प्रयास न करे।

(6) चिकित्सा संस्थान- यह बहुत ही बड़ा तथा विशद है जिसमें सूत्रस्थान के समान ही 30 अध्याय हैं, परन्तु इन अध्यायों में केवल 13 अध्याय ही मौलिक हैं तथा अन्तिम 17 अध्याय दृढबल के द्वारा पूरित हैं। इसे चरकसंहिता का प्राण माना जाता है। इसि विशद विवेचन के कारण 'चरकस्तु चिकित्सते' लोकोक्ति प्रख्यात है।

(7) कल्प स्थान- वमन, विरेचन द्रव्यों की कल्पना तथा भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन है। 12 अध्याय हैं।

(8) सिद्ध स्थान- इसमें स्वस्थ तथा रोगी दोनों के हित पर ध्यान रखा गया है। इसमें भी 12 अध्याय हैं।

इस प्रकार 8 स्थानों में 120 अध्याय वर्णित है । अन्त के 41 अध्याय दृढ़बल के द्वारा पूरे किये गये हैं।

अति प्राचीन युग में हमारी चिकित्सा प्रणाली का उद्देश्य इतना व्यापक था, पद्धति इतनी परिपूर्ण थी कि चरक संहिता केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी लोकप्रिय हुई। अपने समय के चिकित्सा शास्त्र के वर्णन में चरक ने विभिन्न विषयों का बृहद् विवेचन किया है। उदाहरणस्वरूप- भ्रूण की उत्पत्ति एवं विकास, मानव शरीर का शरीर-रचना विज्ञान, शरीर की कार्यविधि तथा शरीर के तीन पदार्थ-वायु, पित्त, कफ के असन्तुलन अथवा अन्य किसी कारण से शरीर की कार्यविधि में अव्यवस्था, विभिन्न रोगों का निदान, वर्गीकरण, विज्ञान निरूपण, पूर्वानुमान तथा उपचार एवं शरीर के कायाकल्प-विज्ञान जैसे विषयों का वर्णन किया है।

शारीरस्थान में पञ्चमहाभूत तथा चेतना के मिलने से 'पुरुष' के उत्पन्न होने का वर्णन है। यहाँ ईश्वर, प्रकृति तथा आत्मा के विषय में आवश्यक विवरण के बाद मोक्ष का मार्ग, उत्तम सन्तानविधि, सूतिकागृह, प्रसूति तथा कौमारभृत्य का वर्णन है।

भ्रूण निर्माण में स्त्री-पुरुष दोनों का योगदान, भ्रूण का नर-मादा होना, उसमें पुरुष के वीर्य तथा स्त्री के रज की प्रधानता, भिन्न-भिन्न महीनों में के विकास का वर्णन जैसे विषयों का वर्णन तत्कालीन अन्य प्राचीन सभ्यताओं के चिकित्सा विज्ञान के ग्रन्थों में दिये गये वर्णन से बहुत अधिक

अग्रवर्ती है भले ही वर्तमान ज्ञान-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में कुछ अल्प हो किन्तु पश्चिमी संसार चरक संहिता जैसी स्वास्थ्य एवं रोग सम्बन्धी व्याख्या अगले 1500 वर्ष तक भी न कर पाया।

वात-पित्त और कफ से त्रिदोष की कल्पना हमारे शरीर में बहुत लाभकर कार्य करती है। 'वात' पाँच प्रकार की होती है। यह चलने-फिरने, अन्तःश्वसन, निःश्वसन, बोलने-चालने तथा मलमूत्र को बाहर निकालने का कार्य सम्पन्न करने में सहायक होती है । 'पित्त' पाचन में सहायक होता है- शरीर को उष्मा, आँखों की अच्छी रोशनी, शरीर को अच्छा रंग, मस्तिष्क को प्रसन्नता तथा बुद्धि प्रदान करता है। 'कफ' शरीर के सामान्य भार यौन-शक्ति, मजबूती सहन शक्ति के लिये उत्तरदायी होती है। चरक ने यह भी स्पष्ट किया कि समान मात्रा में खाया गया भोजन अलग-अलग शरीरों में भिन्न-भिन्न प्रभाव (दोष) पैदा करता है। अर्थात् एक शरीर दूसरे शरीर से भिन्न होता है ।

चरक को अनुवांशिकी के मूल सिद्धान्तों की भी जानकारी थी। उनकी मान्यता थी कि बच्चों में आनुवांशिक दोष जैसे अंधापन, लंगड़ापन जैसी विकलाङ्गता माता या पिता के किसी कमी के कारण नहीं अपितु डिम्बाणु या शुक्राणु की त्रुटि के कारण होती है। चरक ने शरीर रचना और भिन्न अंगों का अध्ययन किया था। उनका कहना था कि हृदय पूरे शरीर के 13 मुख्य धमनियों से जुड़ा है, इसके अतिरिक्त सैकड़ों छोटी, बड़ी धमनियाँ है जो सारे उत्तकों को भोजन रस पहुँचाती है और मल तथा व्यर्थ पदार्थ बाहर ले आती है। इस प्रकार हृदय ही शरीर का नियन्त्रण केन्द्र है। चरक के औषधशास्त्र में मुख्यतः वनस्पति पदार्थों का ही समावेश मिलता है। यद्यपि जान्तव तथा खनिज पदार्थों का प्रयोग भी यदा कदा किया जाता था।

चरक ने विवाह के विषय में भी सुन्दर विवेचना की है। विवाह की आयु पुरुष के लिये 21 वर्ष और कन्या कि लिये 12 वर्ष तथा तीन वर्ष बाद द्विरागमन। तब जाकर संतानोत्पत्ति की क्षमता आती थी। उत्तम सन्तान को राष्ट्र का हित माना है इसी से जाति सूत्रीय अध्याय में गर्भाधान के नियमों का उल्लेख बड़ी गम्भीरता से किया है। उस समय के युग की रहन-सहन, रीति-रिवाज परम्पराओं, दैनिक जीवन चर्या, धूम्रपान, मदिरापान, वेषभूषा, वस्त्रों आदि का वर्णन तो प्रतिपृष्ठ पर निर्दिष्ट है। उस युग में

आतुरालय (अस्पताल) कितने तथा कौन-कौन से साधनों से युक्त होते थे इसका सुन्दर विवरण मिलता है। तथ्य यह है कि चरक संहिता की दृष्टि बड़ी उदार तथा विशाल है।

अति प्राचीन युग में हमारी चिकित्सा प्रणाली का उद्देश्य इतना व्यापक था पद्धति इतनी परिपूर्ण थी कि चरक संहिता केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी लोकप्रिय हुई। आज भी पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि चरक सुश्रुत काल की भारतीय चिकित्सा यूनानी पद्धति से कहीं आगे थी।

चरकसंहिता आयुर्वेद विज्ञान का महनीय विश्वकोश है जिसमें इस शास्त्र के मौलिक तथ्यों तथा सिद्धान्तों का बड़ा ही गम्भीर विवेचन है। इसके अतिरिक्त चरकसंहिता प्राचीन भारतीयों के जीवनवृत्त तथा भारतीय समाज का नितान्त उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत करती है। चरक की अनेक विशिष्टताएं कश्यपसंहिता में भी उपलब्ध होती हैं। चरक का युग विचार के स्वातन्त्र्य का पोषक था। कोई भी सिद्धान्त विद्वानों की सभा में निर्णीत होने पर ही सर्वमान्य होता था। आयुर्वेदीय तथ्यों के निर्णय के लिए चरक ने तद्विद्य संभाषा (विषय के जानकारों की सभा या परिषद्) की स्थापना की बात लिखी है। संभाषा दो प्रकार होती थी-सन्धाय संभाषा (मित्रतापूर्वक विचार विमर्श) तथा विगृह्य संभाषा (विग्रहपूर्वक विचार)। इस प्रसङ्ग में विमानस्थान में चरक ने वाद के लिए उपयोगी शिक्षा तथा तर्कपद्धति का विन्यास किया है जो, गौतम के न्याय सूत्रों से पूर्णतया मिलती है। ऐसी गोष्ठियों का उल्लेख चरक ने कई बार किया है।

चरक के विषय में भी महाभारत के समान ठीक ही कहा गया है-

चिकित्सा वह्निवेशस्य स्वस्थातुरहितं प्रति।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

आचार्य चरक न केवल आयुर्वेद के मर्मज्ञ थे, वे सभी शास्त्रों के अवज्ञाता थे। उनका दर्शन, विचार, सांख्यदर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य चरक ने मुख्य उपदेश देते हुए बताया है कि सभी दुःखों का, रोगों का मुख्य कारण है-उपधा, उपधा का दूसरा नाम है तृष्णा। यही उपधा दुःखरूप और दुःख के आश्रयभूत शरीर की उत्पत्ति का मूल हेतु है। अतः उपधा न रहने पर दुःख का समूल नाश हो जाता है-

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः।

त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः।।

इतना ही नहीं, आचार्य चरक बतलाते हैं कि यह देह वेदनाओं का अधिष्ठान- आश्रय है। योग और मोक्ष में सभी वेदनाओं का नाश हो जाता है। मोक्ष में आत्यन्तिक वेदनाओं का नाश हो जाता है और योग मोक्ष को दिलानेवाला होता है-

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।

मोक्षे निवृत्तिनिःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः।।

मन से जब रज एवं तम का अभाव होता है और बलवान् कर्मों का क्षय हो जाता है तब कर्मसंयोग अर्थात् कर्मजन्य बन्धनों से वियोग हो जाता है, उसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष कहते हैं, जिसके हो जानेपर पुनः जन्म नहीं मिलता और परमपदकी प्राप्ति हो जाती है-

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।

वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते।।

आचार्य चरक बताते हैं कि निवृत्तिमार्ग को अपवर्ग कहते हैं, वह अपवर्ग सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त शान्त, अविनाशी एवं ब्रह्मस्वरूप है, उसे मोक्ष कहते हैं। उस मोक्ष के मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये; क्योंकि कारण से उत्पन्न होनेवाले उत्पत्तिधर्मा पदार्थ दुःखदायी, तत्त्वहीन और अनित्य हैं, सभी प्रकार के प्रवृत्तिमार्ग का नाम दुःख है तथा सर्वसंन्यास (सभी पदार्थोंके त्याग) में ही यथार्थ सुख है, यह मोक्ष का मार्ग है-'सर्वप्रवृत्तिषु दुःखसंज्ञा, सर्वसंन्यासे सुखमित्यभिनिवेशः; एष मार्गोऽपवर्गाय, अतोऽन्यथा बध्यते'।

आचार्य चरक ने जहाँ मोक्षप्राप्ति की बात लिखी है, वहीं शरीर के आरोग्य को भी महान् सुख की संज्ञा दी है और कहा है कि आरोग्यप्राप्ति से मनुष्यों में बल, आयु और महान् सुख की प्राप्ति होती है। साथ ही वह मनोवाञ्छित फलों को भी प्राप्त करता है। इस प्रकार आरोग्यसम्पन्न पुरुष को शुभ लक्षण कहा जाता है-'आरोग्याद्बलमायुश्च सुखं च लभते महत्'।

ऐसा कहा जाता है कि आचार्य चरक न केवल संहिताग्रन्थों के प्रणयनमें संलग्न रहते थे, अपितु वे घूम घूमकर इधर से उधर विचरण कर जहाँ भी रोगी हों; पहुँचकर उनकी चिकित्सा किया करते थे और इसी कल्याणकारी विचरणक्रिया से उनका 'चरक' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। कुछ लोग इन्हें भगवान् शेषनागका अवतार बताते हैं। जो भी हो, आचार्य चरक ने लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है। उनकी कृति 'चरकसंहिता' चिकित्साजगत् का अत्यन्त प्रामाणिक, प्रौढ़ और महान् सैद्धान्तिक ग्रन्थ है। यह सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सा, कल्प तथा सिद्धि-इन आठ स्थानों में विभक्त है। स्थानोंके अन्तर्गत अध्याय हैं। इसपर संस्कृत आदि भाषाओं में अनेक टीका-भाष्य हो चुके हैं। इसका स्वस्थवृत्त प्रकरण बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जिसके अध्ययनसे पूरी जीवनशैली, आहारचर्या, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या आदिका सम्यक् परिज्ञान हो जाता है और तदनुसार व्यक्ति अनुसरण करे तो वह सदा नीरोग रह सकता है। चरकसंहिता के उपदेश बड़े ही मार्मिक, कण्ठ करने योग्य तथा शिक्षाप्रद हैं। यहाँ केवल एक उपदेश दिया जा रहा है, जिसका भाव यह है कि व्यक्ति को यह समझना चाहिये कि वह स्वयं को प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता का कर्ता अपने-आप ही है, कोई दूसरा नहीं है। यदि वह असत्कर्म करेगा तो फल होगा दुःख और यदि सत्कर्म करेगा तो फल होगा सुख। अतः ऐसा ठीक-ठीक समझकर उसे कल्याणकारी मार्गका-सन्मार्गका अवलम्बन लेना चाहिये। इस मार्गमें दृढ़तासे स्थिर रहे, किसी प्रकारसे भयभीत होने अथवा विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं है। आचार्यके मूल वचन इस प्रकार हैं-

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्।।